मानवीय संवेदना और साहित्य

के विशिष्ट स्वर

संस्करण: मार्च - 2024

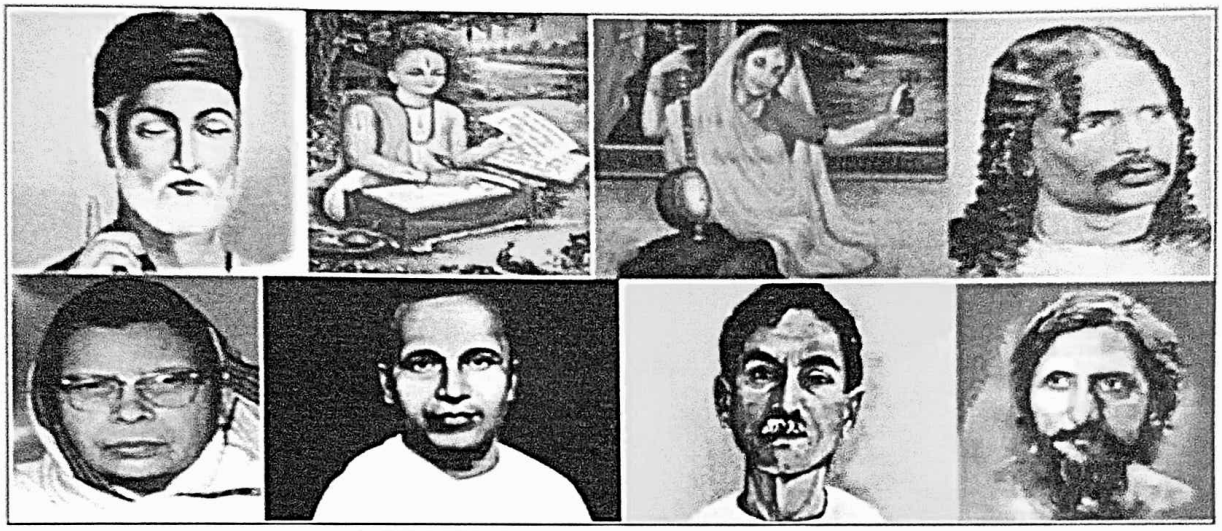

सम्पादक

डॉ0 पवन कुमार

सह-आचार्य हिंदी

GOPAL RAO PATIL

GOVERNMENT DEGREE COLLEGE

BHAINSA, DIST. NIRMAL, TELANGANA - 504103

https://www.gdcts.cgg.gov.in/bhainsa/edu

Accredited with NAAC "B" Grade & Certified ISO

रचनाकार - संकलन

सम्पादक - डॉ० पवन कुमार

मूल्य - 360/- रूपए

Designed by - Shivansh Tripathi "Nayan"
Contact Number - 8808837118
Mail - shivanshtripathi0123@gmail.com

Printed by - Aryan Digital Press
Delhi - 110090

कॉपीराइट ©

ISBN : 978-81-971807-5-0

"मानवीय संवेदना और साहित्य के विभिन्न स्वर"

प्रथम संस्करण 2024 मार्च

सर्वाधिकार सुरक्षित। पुस्तक समीक्षा में सक्षिप्त उद्धरणों के उपयोग को छोड़कर, कॉपीराइट धारक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी भाग को पुनः प्रस्तुत या उपयोग नहीं किया जा सकता है।

अनुक्रमणिका

1. किन्नर समुदाय पर आधारित हिंदी उपन्यासों में 'स्त्री और किन्नर' समुदाय की वेदना के सम्मिलित स्वर- अनीता कुमारी 01
2. अपना गाँव कहानी में अभिव्यक्त दलित-जीवन की विवशता - विक्रम बालकृष्ण वारंग 05
3. अल्पसंख्यक विमर्श– प्रेमचंद का कथा साहित्य- डॉ. दत्ताशिवराम साकोले 09
4. मैत्रेयी पुष्पा कृत उपन्यासों में चित्रित स्त्री-स्वर- डॉ. पूनम कुमारी 13
5. 'कस्बाई सिमोन' उपन्यास में स्त्री-जीवन- शहनाज़ 16
6. भारत-विभाजन की त्रासदी और स्त्री- डॉ. अखिलेश कुमार सिंह 21
7. 'हिंदी उपन्यासों में आदिवासी-चिंतन'- प्रो. डॉ. शेख शहनाज अहमद 25
8. प्रभा खेतान कृत उपन्यास "छिन्नमस्ता" में स्त्री विमर्श की अवधारणा- डॉ० एम. मधुकर राव 29
9. डॉ. सुशीला टाकभौरे कृत कहानियों में चित्रित दलित यथार्थ- प्राचार्य डॉ. एम. सुधाकर 33
10. पुरुषवादी समाज के विरोध में स्त्रीवादी चिंतन- डॉ. डी. हेमलता 36
11. निर्मलापुतुल की कविता में स्त्री स्वर- नरवाडे राहुल 40
12. धर्मवीर भारती के साहित्य में मानवीय मूल्य एवं युग-बोध- राज श्री भारद्वाज 43
13. विज्ञापन की दुनिया और स्त्री छवि काव्य के विशेष संदर्भ में- डॉ. अस्मा बानू 50
14. "नाच्यौ बहुत गोपाल" उपन्यास में दलित-नारी चित्रण- डॉ. नरसिंह राव कल्याणी 52
15. "दलित साहित्य का वैचारिक पक्ष"- डॉ. खाजी एम.के. 55
16. समकालीन कविता में मानवीय मूल्य- डॉ. अम्बेडकर बाबू राव 60
17. जनजातीय हिंदी कहानियों में स्त्री और उसकी समस्याएँ- टी. प्रताप सिंह 65
18. 'समकालीन हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन'- प्रो. डॉ. दीपक विनायक राव पवार 68
19. "दूर! बहुत दूर!" उपन्यास में नारी चेतना- डॉ. ठकुरवाड गोदावरी 72
20. समकालीन आदिवासी महिला रचनाकारों की कविताओं में अभिव्यक्त संवेदना-डॉ. अशोक चवान् 76
21. कृष्णासोबती कृत उपन्यासों में चित्रित स्त्री-जीवन- बोनोड पांडुरंग पोशट्टी 80

'हिंदी उपन्यासों में आदिवासी-चिंतन'

भारत विभिन्नताओं का देश है। सदियों से भारतीय समाज में अनेक वर्ग, जाति, धर्म तथा संप्रदाय के लोग एक साथ मिलकर रहते आये हैं। आदिवासी समुदाय भी अनेक क्रिया-कलापों के साथ संगठित रूप से रहते है। आज भी बहुत से आदिवासी जंगलों, पहाड़ों और दुर्गम प्रदेशों में रहकर अपना जीवनयापन करते है। सदियों से, ये लोग अन्य सभ्यताओं और संस्कृतियों से दूर होने के कारण कई मामलों में आज भी पिछड़े हुए हैं। आदिवासी-साहित्य का चेहरा तथाकथित शिष्ट-साहित्य से अलग है। इसका अपना ही समाजशास्त्र है। आदिवासी-विमर्श और दलित-विमर्श लगभग साथ ही, हिंदी साहित्य के विमर्श के केंद्र में उपस्थित होते हैं, इसलिए ये तीनों अपनी-अपनी विचारधाराओं और चिंतन से एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए, अपनी अस्मिता का प्रश्न लेकर उपस्थित होते हैं। इस बात का प्रमाण है हिंदी का उपन्यास साहित्य, जो इन प्रयासों में काफ़ी समृद्ध है।

आदिवासी जीवन पर केंद्रित उपन्यासों की जब हम चर्चा करते हैं, तो पाते हैं कि, 'कब तक पुकारूँ' से लेकर 'बाजत अनहत ढोल' तक, उपन्यासों की एक बेहद विस्तृत लंबी परंपरा है। 'सूरज की छाँव' से 'गायब होता देश' तक देखें तो तमाम उपन्यास हैं, जिनमें आदिवासी समाज की संस्कृति और लोक-जीवन की खूबियों को प्रत्येक स्तर पर समेटने की चेष्टा हुई है। आदिवासी-समाज, जिसे हम चौथी दुनिया भी कहते हैं, उसका अपना ही एक अलिखित वाङ्मय है। उसका इतिहास और भूगोल वैश्विक होती दुनिया में प्रायः एक जैसा ही है। अतः भले ही हिंदी उपन्यास की विकास-यात्रा ने काफ़ी दूरी तय की है, उसके बरअक्स आदिवासी हिंदी उपन्यास का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। इसे गंभीरता से तो काफ़ी बाद में लिया जाने लगा। यह हिंदी उपन्यास का भविष्य गढ़ता है।

आदिवासी समाज को समकालीन हिंदी उपन्यासों में बड़ी ही संजीदगी से समझने की कोशिश की गई है। ये उपन्यास न केवल आदिवासी समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक पक्ष को ही मुद्दों के रूप में उठाते हैं, बल्कि उसके आर्थिक शोषण को भी अपना विषय बनाते हैं। इसके साथ ही उनकी मान्यताओं पर विमर्श के लिए नई जमीन भी तैयार करते हैं। भारत के इतिहास में आदिवासियों का अपना इतिहास रहा है। साहित्य मात्र समाज को निर्मित नहीं करता है, बल्कि उसके विकास में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी-समाज का चित्रण उपन्यासकारों ने समय-समय पर किया है और करते आ रहे हैं। उनके अनुसार आदिवासी यहाँ के मूल निवासी हैं, परंतु आज भी उन्हें उपेक्षित जीवन जीना पड़ रहा है। इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा कहती हैं, "कभी-कभी सड़कों, गलियों में झूमते या अखबारों की अपराध-सुर्खियों में दिखाई देने वाले कंजर, साँसी, नट, मदारी, सपेरे, पारदी, हाबूड़े, बनजारे, वावरिया, कबूतरे न जाने कितनी जन-जातियाँ हैं, जो सभ्य-समाज के हाशिये पर डेरा लगाए सदियाँ गुजार देती हैं- हमारा उनके लिए चौंकना सिर्फ काम चलाऊँ ही बना रहता है। उनके लिए हम हैं 'कज्जा' और 'दिकू' यानि सभ्य-सभ्रांत 'परदेशी', उनका इस्तेमाल करने वाला शोषक, उनके अपराधों से डरते हुए, मगर अपराधी बनाये रखने के आग्रही।"1 हिंदी में आदिवासी जीवन को लेकर उपन्यास लेखन की परंपरा अधिक पुरानी नहीं है। उपन्यास तो लिखे जा रहे थे, किंतु आदिवासी समाज आरंभ के उपन्यासों में पूर्णरूप से नहीं आया था। आदिवासी समुदाय को लेकर उपन्यासों का लेखन स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ही शुरू हुआ था। इसके पहले कुछ उपन्यासों में किसी-किसी आदिवासी समुदाय का थोड़ा बहुत ज़िक्र मिल जाता था।

हिंदी-जगत सर्वप्रथम आदिवासी-समाज से रूबरू 'रेणु' के आँचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' से हुआ, जब उन्होंने अपने ज़मीन से बेदखल संथालों को, अपने स्वत्व और अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए देखा था। यहीं उनका परिचय आदिवासियों की जिजीविषा और जीवटता से हुआ। प्रो.बी.के. कलासवा ने लिखा है- "आदिवासी-जीवन संबंधी उपन्यास लिखने वालों में प्रथम नाम जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का लिया जाता है, जिन्होंने **1899 ई.** में 'बसंतमालती' नाम से उपन्यास लिखा, जो मुंगेर जिले के मलपुर अंचल के मल्लाह आदिवासी जीवन

पर आधारित है। उसके बाद अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की कृति 'अधखिला फूल'(1907) लिखी गई, जिसमें आदिवासी जीवन से संबंधित कुछ अंश थे। यह उपन्यास संथाल आदिवासियों को केंद्र में रख कर लिखा गया था। वृंदावनलाल वर्मा द्वारा रचित उपन्यास 'कचनार'(1947), हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन को लेकर लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास है। वृंदावनलाल वर्मा ने इसे सच्ची घटनाओं पर आधारित उपन्यास बताया है।"2

बीसवीं शती के उत्तरार्ध में, बहुत से आदिवासी उपन्यास लिखे गये, जिनमें प्रमुख हैं– देवेंद्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये' शिवप्रसाद का 'शैलूष', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल और सूरज', 'किरण की छाँव', संजीव का 'धार', तले की दूबे, 'जंगल जहाँ शुरु होता है', 'सावधान नीचे आग है', राकेशवत्स का 'जंगल के आस-पास', आदि। हिंदी उपन्यासों की विकास-यात्रा की बात करें तो आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यास सही अर्थों में स्वातंत्र्योत्तर काल में ही दृष्टिगोचर होते हैं।

सन् 1956 में लिखा गया उपन्यास 'वनलक्ष्मी' में आदिवासी-समाज के धर्माचरण की गंभीर समस्या को उठाया गया। इसमें बिहार की 'हो' जनजाति की एक युवती, बुढ़नी, को खिरीस्तानी धर्म को मानने वाला एक लड़का जेफरण अपने जाल में फंसाता है। इसी समस्या पर यह उपन्यास आधारित है। नागार्जुन द्वारा सन् 1957 में 'रतिनाथ की चाची' लिखा गया उपन्यास है, जिसमें बिहार के आदिवासी मछुआरों की अस्मिता को बचाए रखने की जद्दोजहद और कोसी परियोजना का दुष्परिणाम यहाँ के आदिवासियों के जीवन को किस प्रकार प्रभावित करता है, को दिखाया गया है। रांगेय राघव की रचना, 'कब तक पुकारूँ', सन् 1957 में प्रकाशित हुई। इस उपन्यास के केंद्र में राजस्थान की जनजाति के रीति-रिवाजों, समाज में इनकी स्थिति और तथाकथित सभ्य-समाज के जुल्म को, साहित्य के माध्यम से दिखाया गया है।

सन् 1960 में शानी द्वारा लिखे गए उपन्यास, 'साँप और सीढ़ी', में उड़ीसा एवं बस्तर के मध्य 'कस्तूरी' नामक गाँव के जनजीवन तथा उसकी समस्याओं को अभिव्यक्ति दी गई। इसी धरती पर आधारित उनका 'शालवनों का द्वीप' भी सन् 1967 में प्रकाशित हुआ। ऐसे और कई उपन्यास हैं, जिनमें आदिवासी जीवन की व्यथा, कथा, त्रासदी, शोषण आदि को जगह दी गयी, जिनमें राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', योगेंद्र सिन्हा का 'वन के मन में', 'सागर लहरें और मनुष्य' उदय शंकरभट्ट ने 1964 में लिखा। इस उपन्यास में आदिवासी जीवन को दर्शाया गया। हिंदी के आदिवासी उपन्यासों को जब अध्ययन करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि उपन्यासकारों ने आदिवासी जीवन के उन पहलुओं को उजागर किया है, जिस पर अब तक किसी ने प्रकाश ही नहीं डाला। यहाँ के मूलनिवासी होने के बावजूद भी उन्हें आज भी उपेक्षितों का जीवन जीना पड़ रहा है।

21वीं सदी के उपन्यासों की इस परंपरा को आगे बढ़ाने वाले और आदिवासी शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाले उपन्यास, इक्कीसवीं सदी में लिखे गए और आगे भी लिखे जाएँगे। विकास के नाम पर आदिवासी समुदाय को उसकी मूलभूत आवश्यकताओं जल, जंगल, जमीन से बेदखल किया जा रहा है। ऐसे में संकट केवल उनके अस्तित्व पर ही नहीं बल्कि उनकी संस्कृति पर भी है। इसी को केंद्र में रखकर दो उपन्यास लिखे गए हैं, 'ग्लोबल गाँव के देवता', तथा 'गायब होता देश'; इन्हें रणेंद्र ने लिखा है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में अंतर्राष्ट्रीय मल्टिनेशनल कंपनियों के अत्याचार व शोषण को दिखाया गया है, साथ ही इन कंपनियों के त्याज्य पदार्थों से उपजी घातक बीमारियों को भी। इसमें एक आदिवासी अंधविश्वास के कारण करमुड़ीकटवा से सिरकटवा लेता है। असूर समाज की सांस्कृतिक एवं भौतिक संपदा को ताकतवर लोगों के द्वारा लूटे जाने पर, एक पूरा देश ही गायब होता जा रहा है। उपन्यासकार के अनुसार, इनमें भी एक धनलोलुप-वर्ग है। ये घटनाएँ सिर्फ पूर्वी आदिवासी जनजातियों के साथ ही नहीं, पश्चिम की आदिवासी जनजातियों के साथ भी घटित हुई हैं। मसलन राजस्थान के आदिवासी समाज के विद्रोह पर केंद्रित उपन्यास 'धूणी तपे तीर', जो हरिराम मीणा ने लिखा है, जो अपने स्वरूप में उपनिवेशी दौर के सामंती एवं अंग्रेजी शासकों की मिली-भगत का ऐतिहासिक दस्तावेज पेश करने के साथ ही, औपनिवेशिक काल से पूर्व की आदिवासी स्वतंत्रता को रेखाँकित करता है। इसके अलावा यह उपन्यास जलियाँवाला बाग-हत्याकांड का भी प्रसंग रचता है, जिसमें आदिवासियों को ढेर होते दिखाया गया है। यह दुखद है

कि इतनी बड़ी कुर्बानी देने के बाद, इतिहास से आदिवासी समाज का यह त्याग गायब कर दिया गया। इससे पता चलता है, जिस इतिहास, आज़ादी का हमसे रूबरू कराया गया, वह कहीं-न-कहीं पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है या अधूरा है। उसका 'सवाल्टर्न' पक्ष अब भी अपने आलोकित होने की राह देख रहा है। कुल-मिलाकर यह कहना उचित प्रतीत होता है कि आदिवासियों की अस्मिता जीवन को टुच्चे तौर पर सुखी-समृद्ध बनाने में नहीं है, उनका तो ये मानना है कि जरूरत जितनी ज्यादा होगी, उतने ज्यादा भौतिक संसाधनों से हम घिरे-हुए रहेंगे और उतना ही हम अपने पर्यावरण से विश्वासघात करेंगे।

'गायब होता देश' में मुण्डा आदिवासी समुदाय के शोषण-दमन, संघर्ष को कथा का माध्यम बनाया गया है, साथ ही मुण्डा समाज के इतिहास और संस्कृति का विश्लेषण किया गया है। प्रसिद्ध कथाकार, संपादक एवं विचारक रमेश उपाध्याय ने गायब होता देश के बारे में लिखा है कि, "यह उपन्यास भूमंडलीय यथार्थवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है।"4 रमेश उपाध्याय लिखते हैं-, "हम उपन्यास में वर्तमान व्यवस्था विकास के नाम पर आदिवासियों की उन्नत, सुंदर और टिकाऊ सभ्यता-संस्कृति को समूल नष्ट करने पर तुले हैं। देशी-विदेशी कॉर्पोरेट, बिल्डर, भू-माफिया, मीडिया, खदान कंपनियाँ, केंद्र तथा राज्य सरकारें सभी आदिवासियों की जल, जमीन एवं जंगल हड़पने, उनकी पहाड़ो में छिपी संपदा को लूटने तथा उन्हें मार-पीटकर उजाड़ने, उन्हें और दरिद्र बनाने पर तुले हुए हैं।"5

निष्कर्ष - आदिवासी-जीवन पर केंद्रित हिंदी उपन्यासों में, जो तथ्य उभर कर आता है, उसके अनुसार आदिवासियों की आबादी का बड़ा हिस्सा शोषित एवं प्रताड़ित है। ये उपन्यास आदिवासी समाज के पर्यावरण से एकाकार होने को तो दिखाते ही हैं, हमारे देश की सामाजिक एवं समावेशी संस्कृति का भी मुहावरा गढ़ते हैं, जो आदिवासी समाज का अपना वैशिष्ट्य है। इन उपन्यासों ने आदिवासी प्रतिरोध के स्वर और उस स्वर की भवितव्यता का समीकरण सही तरह से चिह्नित किया है। हिंदी उपन्यासों का आदिवासी पक्ष आदिवासी-जीवन तथा संस्कृति के संरक्षण के बहाने हमारी प्रकृति, पर्यावरण और हमारे मनुष्य होने के संवेदनात्मक ज्ञान की सजग पहरेदारी करता है। इस निष्ठावान चेष्टा से भविष्य के ऐसे भारत की कल्पना करना अनुचित न होगा, जहाँ एक भारत में एक ही भारत होगा और जिसकी बुनियाद समानता और न्यायप्रियता पर टिकी होगी।

संदर्भ -

1. मैत्रेयी पुष्पा– अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि.- 1बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली।
2. प्रो. बी. के. कलासवा– हिंदी में आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन
3. सं. लीलाधर मंडजोई– नयाज्ञानोदय, जुलाई 1914 अंक 137 पृ.सं.110
4. सं. लीलाधर मंडलोई– वहीं
5. डॉ. हरिश्चंद्रः उप्रेती जनजातियाँ संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी जयपुर, पृ. सं. - 1
6. आदिवासी साहित्य विमर्श- चुनौतियाँ और संभावनाएँ- गंगासहाय मीना
7. आदिवासी विमर्श के रोडे- केदारप्रसाद मीणा

शोध लेखक

प्रो. डॉ. शेख शहेनाज अहेमद

हिंदी विभाग प्रमुख